पाणिनिकाल एवं संस्कृतमें द्विवचन

श्री उदयवीर शास्त्री, गाजियाबाद

पिछले दिनों जनवरी-फरवरी ७१ में फिनलैण्ड देशके निवासी डॉ० पारपोला दिल्ली आये हुए थे। उनके विषयमें सुना गया, कि उन्होंने मोइन्जोदड़ो[1] और हड़प्पा लिपि व भाषाको समझनेके लिए पर्याप्त प्रयत्न किया है। डॉ० महोदयका यह दावा मालूम हुआ, कि उक्त लिपि व भाषाको समझनेमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली है। इसी धारणाको स्पष्ट कर लेनेके लिए केन्द्रीय पुरातत्त्व अनुसंधान विभागके भवनमें उनके दो प्रवचन हुए, एक दिनांक १-२-७१ को, तथा दूसरा ४-२-७१ को।

गाजियाबाद निवासी श्री कैलाशचन्द्र वर्माके सहयोगसे पहले प्रवचनमें सम्मिलित होनेका मुझे सुअवसर प्राप्त हो सका। डॉ० पारपोलाका कहना है कि, मोइन्जोदड़ो और हड़प्पाकी लिपि व भाषाका किसी आर्य लिपि व भाषासे कोई सम्बन्ध न होकर द्रविड़ लिपि ब भाषासे सम्बन्ध है। आर्योंकी किसी लिपि व भाषाका प्रसार भारतमें आर्योंके कहीं बाहरसे यहाँ आनेपर हुआ। उनके विचारसे आर्योंके भारतमें आनेका काल ईसापूर्व तेरह सौ वर्षसे सत्रह सौ वर्षके अन्तरालमें है। उससे पूर्व यहाँ द्रविड़ोंका निवास था, आर्योंने आकर उन्हें खदेड़ा, और इस भूभागपर अपना अधिकार जमा लिया।

उक्त लिपि व भाषाका द्रविड़ लिपि व भाषासे सम्बन्ध है, अपने इस साध्यको सिद्ध करनेके लिए डॉ० पारपोलाने प्रमाण प्रस्तुत किया। प्राचीन द्रविड़ लिपिके उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनका प्रयोग देखा जाता है, मोइन्जोदड़ो व हड़प्पाकी भाषामें भी द्विवचनका प्रयोग है, संसारकी अन्य आर्यकुलकी भाषाओंमें द्विवचनका प्रयोग नहीं देखा जाता। केवल भारतीय आर्योंकी संस्कृत भाषामें द्विवचनका प्रयोग है, ईसापूर्व सत्रहसौ वर्षके अनन्तर कालमें जब आर्य बाहरसे भारतमें आये, तब उन्होंने यहाँकी प्रचलित भाषा द्रविड़से अपनी भाषामें द्विवचन उपाहरण (BORROW) किया। भाषामें मूलरूपसे द्विवचनकी मान्यता—मोइन्जोदड़ो आदिकी भाषाका द्रविड़ भाषासे सम्बन्ध समझनेमें पर्याप्त प्रबल प्रमाण है।

विचार करना चाहिए, इस धारणामें सचाईकी सम्भावना कहाँ तक है। डॉ० पारपोलाके भाषणके अनन्तर कहा गया, कि इस विषयमें किसीको अन्य वक्तव्य हो, तो कह सकते हैं।

पुरातत्त्व अनुसन्धान विभागके निदेशक डॉ० बी० बी० लाल महोदयने प्रथम इस अंशपर प्रकाश डाला, कि द्रविड़ भाषाके प्राचीन उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनके प्रयोगको इस दिशामें प्रमाणरूपसे प्रस्तुत करना अत्यन्त शिथिल है, कारण यह है, कि द्रविड़ भाषाके अभी तक उपलब्ध लगभग ब्यालीस अभिलेखोंमेंसे केवल एकमें स्पष्ट और दूसरे एकमें अस्पष्ट द्विवचनका प्रयोग उपलब्ध है, इतना अत्यल्प प्रयोग द्रविड़ भाषामें मौलिक रूपसे द्विवचनके प्रयोगकी मान्यताके लिए उपयुक्त गवाही नहीं है। यह अधिक सम्भव है, द्रविड़ भाषाके किसी अभिलेखमें अन्यत्र से यह उधार लिया गया हो।

इस विषयमें अपने विचार अभिव्यक्त करनेके लिए मुझे भी अवसर प्रदान किया गया। उन्हीं भावोंको यहाँ लिपिबद्ध करनेका प्रयास है।

---

१. इसका उच्चारण 'मोहनजोदड़ो' अशुद्ध है। 'दड़ो' या 'दाड़ो' दो ढेरको कहते हैं। इधर भाषामें भी ढेरको 'दड़ा' कहते हैं। 'जो' छठी विभक्तिका चिह्न है। 'मोइन' का अर्थ है—मरे हुए। पूरे पदका अर्थ है—'मरे हुओंका ढेर'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषामें द्विवचन-प्रयोगका इतिहास जाननेके लिए हमें संस्कृत भाषाके व्याकरणपर दृष्टिपात करना होगा। उपलब्ध संस्कृत व्याकरणोंमें आचार्य पाणिनिका व्याकरण अधिक पूर्ण एवं मूर्द्धन्य है। इस विवेचनके प्रसंगसे हमारा यह समझनेका मुख्य लक्ष्य होगा, कि पाणिनिका काल क्या हो सकता है। इसी आधारपर यह समझनेमें सुविधा हो सकेगी, कि संस्कृत भाषामें द्विवचनका प्रयोग उधार लिया गया है, अथवा वह इसी भाषाका मौलिक रूप है।

इस विवेचनसे पूर्व एक और बात समझ लेना उपयुक्त होगा। कहा जाता है, आर्यकुलकी भाषाओंमें सिवाय संस्कृतके अन्यत्र कहीं द्विवचनका प्रयोग नहीं है। कल्पना की जाती है, संस्कृत और उसके समकक्ष-की युरोपीय भाषाओंकी जननी कोई, एक अन्य भाषा प्राचीन कालमें रही होगी, जिसमें द्विवचनके प्रयोगका अभाव था। उसीके अनुकूल उससे विकृत व परिवर्तित होनेवाली, युरोपीय भाषाओंमें द्विवचनका अभाव रहा। उसी प्राचीन अज्ञात भाषासे विकृत व परिवर्तित होनेवाली संस्कृतमें यह कहींसे उधार लिया गया है।

इस कथन की यथार्थताको समझनेके लिए हम भारतकी वर्तमान भाषाओंकी ओर विद्वान् पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इस विषयमें संभवतः किन्हीं भी विचारक विद्वानोंका मतभेद न होगा, कि दक्षिण भारतकी भाषाओंको इस विवेच्यकी सीमामें न लाकर उत्तर भारतकी जितनी प्रान्तीय भाषा हैं, उन सबका मूल संस्कृत है। इन भाषाओंमें मराठी, कोंकणी, गुजराती, काठियावाड़ी, राजस्थानी, पंजाबी, कश्मीरी, कनौरी, सिरमौरी, गढ़वाली, कुमायूँबी, हिन्दी (हिन्दीके अवान्तर-भेद—शूरसेनी, मागधी, अवधी आदि),उत्कल, बंगला, असमिया आदिका समावेश है। ये सब भाषा संस्कृत भाषासे विभिन्न धाराओंमें परिवर्त्तित व विकृत होती हुई अपने वर्तमान रूपमें पहुँची हैं। इनका मूल संस्कृत होनेपर भी इनमेंसे किसी भाषामें द्विवचनका प्रयोग नहीं है। क्या इस आधारपर यह कल्पना की जा सकती है, कि इन भाषाओंका मूल कोई अन्य ऐसी प्राचीन भाषा रही होगी, जिसमें द्विवचनके प्रयोगका अभाव था ?

वस्तुतः ऐसी कल्पना निराधार ही होगी। इसीके अनुसार क्या यह सुझाव दिया जा सकता है कि भारतीय भाषाओंके समान आर्यकुलकी अन्य युरोपीय आदि भाषाओंका मूल संस्कृत है। अपनी विभिन्न परिस्थितियों एवं परिवर्तनकालकी आवश्यताओंको देखते हुए इन भाषाओंमें द्विवचनके प्रयोगको त्याग दिया गया। अस्तु, जो हो, इस समय यूरोपीय भाषाओंकी जननीका विवेचन इस लेखका लक्ष्य नहीं है। हमें देखना चाहिए, भारतमें संस्कृत भाषाके प्रयोगका वह कौन सा काल संभव है, जब यह कहा जा सके, कि उसमें द्विवचनका प्रयोग द्रविड़ भाषासे उधार लिया गया, अथवा उसका अपना मौलिक रूप है।

संस्कृत भारतीय आर्योंकी भाषा रही है। व्याकरण सदा सर्वसाधारण जनतामें व्यवहृत होनेवाली भाषाका हुआ करता है। अति प्राचीनकालमें संस्कृतके अनेक व्याकरणोंका पता लगता है, परन्तु इस समय संस्कृतका सर्वोपरि मूर्द्धन्य व्याकरण पाणिनि आचार्यका बनाया हुआ है। व्याकरणमें निर्दिष्ट शब्द-प्रयोगोंकी रचनाके आधारपर यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है, कि पाणिनिने यह व्याकरण उस समय बनाया, जब उत्तर अथवा पश्चिमोत्तर भारत की सर्वसाधारण जनता—अपठित जनता भी—संस्कृत भाषाका प्रयोग करती थी। पाणिनिने अपनी रचना अष्टाध्यायीमें शतशः ऐसे प्रयोगोंके साधुत्वका उल्लेख किया है, जो नितांत ग्राम्य एवं प्रायः अपठित जनताके व्यवहारोपयोगी हैं। कतिपय प्रयोग इस प्रकार हैं—

(१) शाक आदि बेचनेवाले कूँजड़े बिक्रीकी सुविधाके लिए पालक, मूली, मेथी, धनियाँ, पोदीना आदि की गड्डी बाँधकर मूल्यके अनुसार आजकल आवाज़ लगाते हैं,—पैसा-पैसा, दो-दो पैसा आदि। पाणिनि कालमें ऐसा व्यवहार संस्कृत भाषामें होता था। उसके लिए—'मूलकपणः, शाकपणः, धान्यकपणः' आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगोंके साधुत्वका निर्देश पाणिनिने एक सूत्र 'नित्यं पणः परिमाणे' (३-३-६६)में किया है। इन पदोंका प्रयोग बाजारमें शाक-भाजी बेचनेवाले किया करते थे।

(२) इसी प्रकार रसोई बनानेवाले पाचक, खेती करनेवाले किसानके दैनिक प्रयोगमें आनेवाले पदोंके साधुत्व का निर्देश अनेकत्र यथाप्रसंग अष्टाध्यायी (४.२.१६-२० तथा ४.४.२२-२६)में पाणिनिने किया है। उन निर्देशोंके अनुसार दही या मठेसे बना खाद्य 'दाधिकम्, औदश्वित्कम्' कहा जाता था, नमकीन शाकरसको 'लवणः सूपः' कहते थे।

(३) किसानोंके धान्योपयोगी विभिन्न क्षेत्रोंके वाचक—प्रैयङ्गवीनम्, ब्रैहेयम्, यव्यम्, तैलीनम्, तिल्यम्, आदि पदोंके साधुत्वका निर्देश पाणिनिने अष्टाध्यायी (५.२.१-४)में किया है। ग्रामीण किसान जिन खेतोंमें विभिन्न अनाज बोते थे, उन खेतोंके लिए इन पदोंका प्रयोग करते थे।

(४) इसी प्रकार कपड़े रँगनेवाले रँगरेजोंके व्यवहारमें आनेवाले 'माञ्जिष्ठम्, काषायम्, लाक्षिकम्, रोचनिकम्' आदि पदोंके साधुत्वके लिए पाणिनिने 'तेन रक्तं रागात्, लक्षारोचनाट्ठक्' (अष्टा० ४.२.१-२) आदि सूत्र कहे हैं।

(५) इस विषयमें दो स्थलोंका और उल्लेख किया जाता है, जो विशेष ध्यान देने योग्य हैं। व्यास नदीसे उत्तर और दक्षिणकी ओर बने कुओंके नाम, बनानेवालोंके नामसे व्यवहृत होते थे। दत्तका बनवाया हुआ कुआं 'दात्तः' कहा जाता था। और गुप्तका बनवाया हुआ 'गौप्तः' (अष्टा० ४.२.७४, उदक् च विपाशः)। नदीके दोनों ओरके प्रदेशोंमें व्यवहृत होनेवाले इन पदोंका स्वरूप समान था, परन्तु दोनों ओरके उच्चारणमें थोड़ा अन्तर था। उत्तरकी ओरके लोग पदके अन्तिम अक्षरपर जोर देते थे अर्थात् वे इन पदोंका अन्तोदात्त उच्चारण करते थे तथा नदीके दक्षिणकी ओरके निवासी इन पदोंके पहले अक्षरपर जोर देते थे, अर्थात् वे इन पदोंका आद्युदात्त उच्चारण करते थे। उस प्रदेशमें निवास करनेवाली साधारण जनता द्वारा इन पदोंके उच्चारणकी विशेषतापर आचार्य पाणिनिने ध्यान देकर अन्तोदात्त उच्चारणके लिए 'अञ्' प्रत्यय और आद्युदात्त उच्चारणके लिए 'अण्' प्रत्ययका विधान किया, जिससे पदोंका स्वरूप समान रहे, और उच्चारणका अन्तर स्पष्ट किया जा सके।

काशिकाकारने सूत्र (४.२.७४)की व्याख्या करते हुए पाणिनिके विषयमें लिखा है—'महती सूक्ष्मेक्षिका वर्त्तते सूत्रकारस्य' अपने कालकी लोकभाषाके विषयमें आचार्य पाणिनिका इतनी गहराई व सूक्ष्मतासे विचार करना आश्चर्यजनक है, जो पदोंके उच्चारण भेदको भी अभिव्यक्त करनेका ध्यान रखकर उसके लिए नियमित व्यवस्था कर दी।

(६) अन्य एक प्रसंगमें पाणिनिने कहा—जातिके एक होनेसे जातिवाचक पदका एकवचनमें प्रयोग प्राप्त होता है, परन्तु लोकभाषामें एकवचन और बहुवचन दोनों रूपोंमें देखा जाता है, उसीके अनुसार आचार्यने उन पदोंके साधुत्वका निर्देश किया—'जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्' (अष्टा० १.२.५८) जैसे—'यवः सम्पन्नः, यवाः सम्पन्नाः। ब्रीहिः सम्पन्नः, ब्रीहयः सम्पन्नाः', आज भी किसान यही प्रयोग करता है—जौ पक गया, जौ पक गये, काट डालो। धान पक गया, धान पक गये, इत्यादि। आजके और पाणिनिकालके व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं, केवल भाषामें अन्तर है। आजका किसान हिन्दी बोलता है, उस समयका संस्कृत बोलता था। उसी व्यवहारके अनुरूप पाणिनिने नियमों का निर्देश किया।

पाणिनि व्याकरणकी उक्त अन्तःसाक्षियोंके आधारपर यह स्पष्ट होता है कि पाणिनिके कालमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत लोक व्यवहारमें आनेवाली जनसाधारणकी भाषा थी। पाणिनिके यथार्थ कालका परिचय प्राप्त करनेके लिए इस स्थितिपर ध्यान देना होगा।

आज पाणिनिका काल ईसापूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी माना जाता है, इस विचारको प्रस्तुत करनेवाले विद्वानोंका कहना यह है, कि पाणिनिका काल ईसापूर्व पाँचवीं-छठीं शतीके और इधर नहीं खींचा जा सकता, लिहाजा वही समय मान लिया गया। भगवान् बुद्धका भी तथाकथित काल यही माना जाता है। पर यह सर्वसम्मत निर्विवाद सत्य है, कि भगवान् बुद्धके तथाकथित कालमें उत्तर अथवा पश्चिमोत्तर भारतके निवासी सर्वसाधारणकी भाषा संस्कृत नहीं थी। उस समय जनसाधारणके व्यवहारकी भाषा पाली अथवा प्राकृत थी। उस समयका बौद्ध साहित्य इसी भाषामें उपलब्ध होता है। भगवान् बुद्धने अपने विचारोंके साधारण जनतामें प्रचार-प्रसारके लिए उसी भाषाका अवलम्बन किया, जो जनताके व्यवहारकी भाषा थी। इसलिए पाणिनि का वह काल होना किसी प्रकार संभव नहीं है।

इस तथ्यको सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं, कि उस कालकी पाली व प्राकृत भाषा उससे प्राक्तनकाल की जनभाषा संस्कृतका ही विकृत रूप है। संस्कृत भाषासे प्राकृतका वह रूप विकृत होनेमें कितना समय लगा होगा, इसका निश्चयपूर्वक कह सकना तो कठिन है, पर मोटा अन्दाज एक आधारपर लगाया जा सकता है। खजुराहोंमें उत्कीर्ण लिपि व उसकी भाषा वर्तमान नागरी लिपि व हिन्दी भाषासे बहुत समानता रखती है, उस भाषाको वर्तमान रूपमें आनेके लिए लगभग एक सहस्र वर्ष लग गये हैं। संस्कृत और बुद्धकालकी प्राकृत भाषामें उससे भी कहीं अधिक अन्तर है। संस्कृतको विकृत व परिवर्तन होकर उस रूपमें आनेके लिए कमसे कम हजार-बारह सौ वर्षका समय अवश्य माना जाना चाहिए।

इसके अनुसार तथाकथित बुद्धकालसे लगभग बारह सौ वर्ष पहले पाणिनिका काल माना जाना चाहिए। तब सत्रहसौ-अठारहसौ वर्ष ईसापूर्वके लगभग पाणिनिका काल आता है। डॉ० पारपोलाका कहना है, कि आर्य भारतमें ईसापूर्व तेरह सौसे सत्रह सौ वर्षके बीच आये। यदि अधिकसे अधिक पहलेका समय भी भारतमें आर्योंके आनेका मान लें, तो पाणिनि द्वारा व्याकरण-रचनाका तथा आर्योंके भारतमें आनेका एक ही समय रहता है? तब क्या यह कहा जायेगा, कि भारतमें आर्योंके आनेके साथ ही साथ पाणिनि अपने व्याकरणको लेकर यहाँ आया? क्योंकि जिस भाषाका वह व्याकरण है, वह भाषा उन आर्योंकी मानी जाती है, और है भी, जिनके विषयमें यह कहा जाता है, कि ये भारतमें कही बाहरसे आये।

व्याकरणके विषयमें यह कथन सर्वथा असंगत व निराधार है, कि भारतमें आर्योंके आगमनके साथ यह आया। अष्टाध्यायी व गणपाठमें उत्तर भारत व पश्चिमोत्तर भारतके अनेक नद, नदी, नगर, उपवन व विशिष्ट व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख हुआ है, जिससे यह स्पष्ट होता है, पाणिनिने इस व्याकरणकी रचना यहीं रहते की। इसके साथ यह भी विचारणीय है कि आर्योंने ईसापूर्व सत्रहवीं शताब्दीमें यहाँ आते ही उत्तर भारतकी समस्त साधारण जनता को संस्कृत कैसे सिखा दी? उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है पाणिनि व्याकरणकी रचनाके समय उत्तर व पश्चिमोत्तर भारतकी सर्वसाधारण जनता किसान, खेतिहर, मजदूर, शाक सब्जी बेचनेवाले कूँजड़े तथा कपड़े रंगनेवाले रँगरेज, व रसोइये आदि तक की दैनिक व्यवहारकी भाषा संस्कृत थी। सत्रहवीं-अठारहवीं ईसापूर्वकी शताब्दीमें भारत आते ही आर्योंने सबको संस्कृत सिखा दी, क्या उनके पास कोई जादूकी छड़ी थी, जो हिलाते ही समस्त उत्तर भारत संस्कृत बोलने लगा?

वास्तविकता यह है, कि आर्य भारतमें बाहरसे कहीं नहीं आये, सदासे यहीं रहते हैं। द्वापर युगके अन्तकाल तक अर्थात् अबसे लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक यहाँकी सब जनता संस्कृत भाषाका प्रयोग करती थी। भारत युद्धके अनन्तर विशिष्ट व्यक्तियोंके न रहने और युद्धोत्तरकी आपदाओंने जनताको अवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घान्धकारमें ला पटका । लगभग डेढ़-दो सौ वर्ष बीतते-बीतते पाणिनिका प्रदुर्भाव हुआ, शब्दशास्त्रमें निष्णात होकर उसने देखा, कि सर्वसाधारण भाषामें तेजीसे परिवर्तन होनेकी आशंका है। विद्वत्समाजका संपर्क न रहनेसे प्रयोगमें विकार आनेको है। उस कालमें पाणिनिने व्याकरणकी रचना कर संस्कृत भाषाको सुसंबद्ध, व्यवस्थित व सुरक्षित बना दिया। उस समय तेजीसे भाषामें परिवर्तन हो रहा था, इसमें यह भी प्रमाण है, कि पाणिनिके तत्काल अनन्तर अन्य अनेक परिवर्तन व विकारोंकी व्यवस्थाके लिए आचार्य कात्यायनको अपने वार्तिकसन्दर्भकी रचना करनी पड़ी। तब कहीं आज तक संस्कृत भाषा उसी रूपमें सुरक्षित है। विकृत व परिवर्तित होती हुई वह भाषा अपने निरन्तर प्रवाहमें बहती आज वर्तमान प्रान्तीय भाषाओंके रूपमें आ पहुँची है।

अपने संघटनमें संस्कृत कभी द्रविड़ भाषासे प्रभावित नहीं हुई। इसकी रचना अपने रूपमें मौलिक व स्वतंत्र है। कालान्तरमें अन्य भाषाओं के शब्दोंको इसने आत्मसात् किया हो, यह साधारण बात है, इस विषयमें कुछ नहीं कहना। संस्कृतमें द्विवचनका प्रयोग अपनी मौलिक रचनाके अनुकूल है। कहींसे उपाहृत व अनुकृत नहीं। इसके प्रयोगका मूल आधार क्या है इसका विवेचन इस समय लक्ष्य नहीं, पर निःसन्देह उसका आधार विचारपूर्ण, विज्ञानमूलक व दार्शनिक भित्तिपर अवलम्बित है। इस लेख द्वारा केवल इस तथ्य पर प्रकाश डालनेका यत्न किया है, कि अबसे पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भारतमें जनता द्वारा संस्कृतमें द्विवचनका प्रयोग अपना मौलिक है। मोइन्जोदड़ोके लेख अभी अज्ञात व अपठित हैं, उनके विषयमें पूर्ण जानकारीकी बात कहना दुस्साहस व सत्यज्ञानकी विडम्बनाका ही द्योतक है। प्रयत्नका मार्ग सबके लिए खुला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org